Research Ambition ISSN: 2456-0146
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer - reviewed, Open Accessed & Indexed)
Web: www.researchambition.com Email: publish2017@gmail.com
Vol. 3, Issue-IV
Feb. 2019
Impact Factor : 5.936 (SJIF) e-ISJN: A4372-3068

बौद्ध दर्शन में गृहस्थ (उपासक) की जीवनचर्या

डॉ0 अनिलेश कुमार सिंह
प्रभारी दर्शन शास्त्र विभाग
के0जी0के0 (पी0जी0)कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

महात्मा बुद्ध के वर्षा के उत्सव के वर्णन में विनय पिटक में उपासक (गृहस्थ) एवं उपासिका का अप्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। बुद्ध के अनुयायियों ने भिक्षु–भिक्षुणी के अतिरिक्त पुरूष और महिला गृस्थि (उपासक एवं उपासिका) का वर्ग माना है। उपासक को चार प्रकार के क्लेश कर्म का नाश करने, छः सम्पत्ति के नाश के कारण, छः दिशाओं की पूजा, आचार्य की सेवा, पत्नी की सेवा, मित्रों की सेवा, सेवक की सेवा, साधु की सेवा करने का विधान किया गया है। गुहस्थों के लिए उपरोक्त नियमों, कत्तव्यों, व्रत्तों का विधान बौद्ध साहित्य में मिलता है जिसका पालन गुहस्थ के जीवन चर्या का अंग होना चाहिए।

शब्दः बौद्ध जीवनचर्या, गुहस्थ जीवन चर्या, उपासक–उपासिका जीवन चर्या।

बौद्ध कालीन समाज में बुद्ध के जीवन चर्या का अनुसरण करके उसका पालन किया जाता था। बुद्ध ने धर्मदेशना प्रधानतया घर–बार छोड़कर संसार से निवृत्ति के लिए अग्रसर भिक्षुओं के लिए किया, किन्तु अधिकांश जनता इतने त्याग के लिए तैयार नहीं थी। इस कारण तथागत ने उन्हें उपासक के रूप में ग्रहण किया एवं उनके लिए धर्म के अलग मार्ग को प्रचार किया। विनय पिटक में केवल भिक्षुओं के सम्बन्ध में बातें कहीं गई है और उपासकों की उपेक्षा की गई है। वर्षा के उत्सव के वर्णन में उपासकों का अप्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। प्रथम धर्म संशति में जो वर्षावास के समय हुई उसमें केवल भिक्षु थे, उपासक नहीं, उसके बाद में संगीति में भिक्षु और उपासक दोनों बड़े समूह में सम्मिलित हुए थे।

बौद्ध समाज व्यवस्था के अनुसार हम समाज को भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका के चर्तुमुखी वर्गीकरण में बांट सकते हैं। जो व्यक्ति घर से वेघर हों, आत्मोन्नति करते हुए परहित का जीवन व्यतीत करना चाहता वह भिक्षु है। भिक्षुणी भी भिक्षु के समान ही विचरण करती थी। भिक्षु–भिक्षुकी के

अतिरिक्त शेष सभी गृहस्थ उपासक–उपासिका है। उनमें से कुछ दसशील धारण कर विशेष रूप के उपासक–उपासिका कहलाने लग जाते है।[1] धम्मपद[2] में भिक्षु और गृहस्थ का वर्णन मिलता है–

असतं भावनमिच्छे य्यं पुरेक्खा रञ्च भिक्खु सु।
आथसेतु च इस्सरियं पूजा परकलेसु च।

भिक्षु तथा गृहस्थ के गुण का वर्णन सुत्त–निपात[3] में भी मिलता है। बुद्ध के अनुयायियों का वर्णन विक्रम सिंधे के लेख से भी मिलता है–

The teaching of the Buddha while paving the path towards escape from the existence are also, strewn with advice on how to male a success of worldly life. The following of the Buddha is four fold namely- Bhikhu, Bhikuni, upasaka and upasika. While the first two categories have renounced worldly life, Upasakas and Upasikas are the male and female lay devotes is of the Buddha.[4]

बुद्ध के अनुयाायियों में भिक्षु–भिक्षुणी के अतिरिक्त गृहस्थ पुरूष तथा महिला वर्ग भी था इस प्रकार संघ के चार आयाम हुए– भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकायें।[5]

इस कारण बुद्ध ने उन्हें गृहस्थ (उपासक) के रूप में स्वीकार किया तथा गृहस्थोपयोगी संस्करण प्रचारित किया। जिसमें निष्कामता और निष्कर्म के स्थान पर संयम, संतोष एवं शुभ कर्मों पर जोर था। इस मार्ग के अनुसरण करने पर जीवन में सुख और सौभाग्य एवं और वैवाहिक जीवन में सद्गति का लाभ होता है।[6] दीघनिकाय[7] में हिगालोवाद सुत्त में उपासक (गृहस्थ) के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है– गृहस्थ के चार कर्म क्लेश, चार स्थानों से वह पाप कर्म नहीं करता, छःअपाय के मुखों का सेवन नहीं करता। छः दिशाओं का आच्छादित कर लोक तथा परलोक पर विजय करता है।

चार कर्म क्लेशों का नाशः– कौन से चार कर्म क्लेश हैः– प्राणी मारना कर्म क्लेश है, चोरी (अदत्ता दान) कर्म क्लेश है, काम (स्त्री संसर्ग) सम्बन्धी दुराचार कर्म क्लेश है, झूठ बोलना कर्म क्लेश है। ये चार कर्म क्लेश उसके नष्ट हो गये रहते है।

चार स्थानों से पाप नहीं करनाः– चार स्थान जहाँ पाप कर्म नहीं करना चाहिएः– छन्द (राग) के रास्ते में जाकर पाप कर्म, द्वेष के रास्ते में जाकर, माह के रास्ते में जाकर तथा भय के रास्ते में जाकर।

छः सम्पत्ति के नाश के कारण :–

(अ) शराब आदि नशा का सेवन में छः दुष्परिणाम हैं तत्काल धन की हानि, कलह का बढ़ना, रोगों का घर, अयश उत्पन्न करने वाला, लज्जा का शासन करने वाला, बुद्धि को दुर्बल कर देता है।

(ब) चैरस्ते पर सैर के छः दुष्परिणाम– स्वयं भी अरक्षित होता है, उसके स्त्री–पुत्र भी अरक्षित होते हैं, उसका धन अरक्षित होता है, बुरी बातों की शंका होती है, झूठी बात उस पर लागू होती है, बहुत दुःखकारक काम को करने वाला होता है।

(स) नाच–तमाशा समन्यभिचरण के छः दोष हैं– कहाँ नाच है, कहाँ गीत है, कहाँ बाद्य है, कहाँ आख्यान है, कहाँ पाणिस्वर है, कहाँ कुम्भ थूण है।

(द) जुआ– द्यूतप्रमाद स्थान के व्यसन के छः दोष हैं– जय पर वैर उत्पन्न, पराजित होने पर धन की सोच, तत्काल धन का नुकसान, सभा में जाने पर वचन का विश्वास नहीं रहता, मित्रों और अमात्यों द्वारा निरस्कृत तथा शादी–विवाह करने वाले उससे सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता।

(य) दुष्ट की मिताई (कुसंगति) कि छः दोषः– धूर्त, शौण्ड, पिपासु, कृतध्न, वंचक और गुण्डे होते हैं। वही इसके मित्र होते हैं।

(र) आलसी होने के छः दोष है– बहुत ठंड है, बहुत गर्म है, बहुत शाम हो गई, बहुत सबेरा है, बहुत भूखा हूँ, बहुत खाया हूँ। कहकर काम नहीं करता।

मित्र और अमित्र :–

चारों को मित्र के रूप में अमित्र जानना चाहिए– पर धन हारक को, वातुनी को, खुशामदी को, नाश में सहायक को मित्र के रूप में अमित्र मानना चाहिए। निम्न को मित्र के रूप में मानना चाहिए– उपकारी को, समान दुःखी–सुखी को, हितवादी को तथा अनुकम्पक को।

छः दिशाओं की पूजाः–

गृहस्थ का छः दिशाओं को जानना चाहिए तथा उनका पालन करना चाहिए।

1. माता–पिता की सेवा– पाँच तरह से पूर्व दिशा माता–पिता की सेवा करनी चाहिए जिन्होंने मेरा पालन किया है, उनका मैं पालन करूँगा, मुझे इनका काम करना चाहिए, मैं उनकी सम्पत्ति की

रक्षा करूँगा, मैं अपने को उनके वारिस होने के योग्य बनाऊँगा, मृत्यु उपरान्त उनका सत्कार करना चाहिए।

माता–पिता को पुत्र पर पाँच प्रकार की अनुकम्पा करना चाहिएः– पाप से बचा के, पुण्य कार्य की शिक्षा, शिल्प सिखके, योग पति या पत्नी ये, उन्हें पैत्रिक अधिकार दें।

2. **आचार्य की सेवा–** पाँच प्रकार से शिष्य को दक्षिण दिशा आचार्य की सेवा करना चाहिए सामने उठकर, उनकी सेवा करके, आज्ञा पालन करके, सत्सर्ग से तथा सत्कार पूर्वक शिल्प सिख कर।

   आचार्य को पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकम्पा करना चाहिएः– सु विनय से युक्त करके, सुशिक्षा देकर, अच्दी शिल्प शिक्षा देकर, मित्र–अमात्यों का सुप्रतिपादन करके तथा दिशा की सुरक्षा करके।

3. **पत्नी की सेवा–** पाँच प्रकार से स्वामी को भार्या रूपी पश्चिम दिशा का प्रत्यु प्रस्थान करना चाहिए, सम्मान से, अपमान न करके, अतिचार न करके, ऐश्वर्य प्रदान करके तथा अलंकार प्रदान करके।

   भार्या को स्वामी पर पाँच प्रकार से अनुकम्पा करनी चाहिए– काम काज भली प्रकार करके, नौकर–चाकर वश में करके, अतिचारिणी न होकर, अर्जित की रक्षा करके तथा सब काम दक्ष होकर।

4. **मित्रों की सेवा–** पाँच प्रकार से मित्र अमात्य रूपी उत्तर दिशा का प्रत्युस्थान करना चाहिए दान से, प्रिय वचन से, अर्थ चर्चा से, समानता से तथा विश्वास प्रदान करके। मित्र को पाँच प्रकार से उस पर अनुकम्पा करनी चाहिए प्रमाद करने पर रक्षा करके, प्रमत्त की सम्पत्ति की रक्षा करके, भय के समय रक्षक बनकर, अपातकाल में साथ देकर तथा उसके कुटुम्ब के साथ दया दिखाकर।

5. **सेवक की सेवा–** पाँच प्रकार से मालिक को दास कर्म कर रूपी नीचे दिशा का प्रस्तुपस्थान करना चाहिए बल के अनुसार काम देकर, भोजन–वेतन देकर, रोगि–सुश्रुषा से, उत्तम रस प्रदान कर तथा समय पर छुट्टी देकर।

   पाँच प्रकार से मालिक पर अनुकम्पा करना चाहिए पहले उठकर, पीछे सोकर, दिये को लेकर, काम अच्छी तरह करके तथा कीर्ति प्रशंसा फैलाकर।

6. **साधु की सेवा–** पाँच प्रकार से कुल पुत्र को श्रमण साधु रूप ही ऊपर दिशा की प्रस्तुपस्थान करना चाहिए– मैत्री भावयुक्त कायिक कर्म से, वाचिक कर्म से, मानसिक कर्म से, खुला द्वार

रखने से तथा खान–पान प्रदान करके। श्रमण साधु को छ प्रकार से कुल पुत्र पर अनुकम्पा करना चाहिए पाप से निवारण करके, कल्याण में प्रवेश कराकर, कल्याण प्रदान करके, विद्या सुनाकर, श्रुत विद्या को दृढ़ कराकर तथा स्वर्ग का रास्ता बतलाकर।

उपरोक्त गृहस्थ कर्मों के अतिरिक्त अन्य गृहस्थ कर्मो का वर्णन प्राप्त होता है। सहानुभूति के चार आधार होते हैं– दानशीलता, स्नेहवाणी, बिना प्रतिफल किया गया कार्य तथा सभी को एक समान समझना।[8] गुहस्थ के विकास के दस मार्गों में विकसित होने से आर्य अनुयायी आर्य वृद्धि में विकसित होता है, और वह तत्वाग्राही तथा निज के लिए सर्वोत्तम फल का उपभोक्ता हो जाता है भू–सम्पत्ति द्वारा, धन और अन्नागार द्वारा बच्चों और पत्नी से, दासों से, सेवकों और कामगारों से, चौपायों से, श्रद्धा से, नैतिक आचारों से, जो कुछ सुनता है उससे वह दानशीलता से तथा पूजा से विकसित होता है।[9]

जो गुहस्थ नैतिक आचारों को छोड़कर अनैतिक आचारों को ग्रहण करता है उन्हें पाँच प्रकार की हानियाँ होती हैं– आलस्य के कारण उसकी सम्पत्ति का ह्रास, सर्वत्र कुख्याति फैलती है, दूसरी की संगति में लज्जित होकर पहुँचता है, विभ्रान्ति में ही रहता है, मृत्यु के उपरान्त नरक में जन्म लेता ळें

गृहस्थों को उचित नैतिक आचार ग्रहण करने तथा इसमें पूर्णतः प्राप्त करने से पाँच लाभ होते हैं– उत्साह के कारण अपार धन सम्पत्ति, सर्बत्र बड़ाई, सभी के संगति के आदर सहित, अविभ्रान्त हो मरता है, स्वर्ग में जन्म लेता है।[10]

गृहस्थों को इच्छापूर्वक बिना कठिनाई के बिना किसी बाधा के सुख के चार मार्गों को जिनका सम्बन्ध मन से है जो यहां उपलब्ध हैः– बुद्ध में पूर्ण श्रद्धा अभिभूत होकर, धम्म में पूर्ण श्रद्धायुक्त होकर, संघ में पूर्व श्रद्धा युक्त होकर तथा आर्यों का एक अनुयायी नैतिक आचारों से जो आर्यों का प्रिय होकर।[11]

गुहस्थों, जिनको तुम साधारण व्यवहार कहते हो वह दूसरी सव्तु विनय में आर्य के लिए जिन्हें साधारण व्यवहार कहा जाता है वह दूसरी वस्तु होती है। अतः गृहस्थों आर्यों के विनय में ये आठ नियम साधारण व्यवहार का त्याग करने में सहायक होते हैं– जीवों पर हिंसा न कर जीवों की हिंसा का परित्याग किया जाना चाहिए, जो दिया जाये उसे ग्रहण कर, जो न दिया जाये उसका परित्याग करना चाहिए, सत्य भाषण बोलने से असत्य भाषण का परित्याग किया जाना चाहिए, अवैमनस्यपूर्ण बोलने से वैमनस्यपूर्ण भाषण का परित्याग किया जाना चाहिए, लोभ न करने से लोभ का परित्याग करना चाहिए, क्रोध से दोषारोपण न करने से क्रोधपूर्ण दोषारोपण का परित्याग करना चाहिए, भयंकर

क्रोधपूर्ण आवेशन करने से भयंकर क्रोधपूर्ण आवेश का परित्याग किया जाना चाहिए, विनय के आत्म अहंकार का परित्याग किया जाना चाहिए।[12]

बुद्ध ने कुमारियों के लिए निम्न जीवन चर्या के नियम बतलाये हैं जिसका पालन करना चाहिए हमारे माता–पिता जो पति देंगे उससे जल्दी सोकर उठेगी, अन्त में सोचेगी, तत्पर सेविका बनेगी, सभी वस्तुओं के लिए मधुर आदेश देगी और मीठा बोलेगी, सभी का सम्मान आदर करेगी, सेवक दृत–कामगर जो भी होंगे उससे काम लेगी, धन–धान्य को सुरक्षित रखेगी। इन पाँच गुणों से युक्त हो मृत्यु के उपरान्त काया के क्षय होने पर देवों के सुखलोक में उत्पन्न होती है।[13]

गृहस्थों के लिए उपरोक्त नियमों, कर्तव्यों व्रतों का विधान बौद्ध साहित्य में किया गया है जिसका पालन गृहस्थ के जीवन चर्या का अंग होना चाहिए।

भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों की जीवन चर्या के तुलनात्मक अध्ययन के लिए आवश्यक है कि उनके जीवन चर्चा के नियम तथा उनके आपस के प्रभाव को दृष्टिगत किया जाये। भिक्षुओं की एक संगठित संस्था थी, जो केवल प्रव्रजित के लिए उपसम्पदा ग्रहण करने के उपरान्त सदस्य बनाता था। गृहस्थ का कोई संगठन नहीं था। भिक्षा की वह डोरी थी जिससे भिक्षु तथा गृहस्थ के तार बंधे थे। भिध्क्षुओं के लिए संघ शिक्षा थी जिसके द्वारा धर्म दीक्षा दी जाती थी भिक्षा के बंधन के कारण भिक्षु गृहस्थ को सही रास्ता बतलाया था। गृहस्थों को भिक्षु के संदोष अचरण के शिकायत का अधिकार था। सारा विनयपिटक गृहस्थों के शिकायतों का ही मार्जन था। भगवान बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं तथा गृहस्थों दोनों के लिए थे। पंचशील व्रत भिक्षु के लिए तो अनुलंघनीव्रत उपदेशपंनीयत्र है। किन्तु गृहस्थ के लिए वे स्वेच्छा से गृहण किये गये शील है। भिक्षु को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं था गृहस्थ को था। एक भिक्षु परिनिवार्ण में प्रवेश पाने के लिए स्वतन्त्र है जबकि गृहस्थ के लिए निवार्ण पर्याप्त है।[14] भिक्षु तथा गृहस्थ को जीवन चर्या में असमाना तथा समानता होते हुए भी दोनों का धम्म एक है– धम्म शरण गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि।

सन्दर्भ सूची

1. भदन्त आनन्द कौसल्यायन भगवान बुद्ध का धर्म, कलकत्ताए ई0 सं0 1957, पृ0–19।
2. धम्मपद,अवधकिशोर नारायण, महाबोधि ग्रंथमाजावि0स0 1995, 73, पृ0–22।
3. सिखी यथा नीलगौवो विहंमगो, हंस स्स नेपोति जवं कुदाचनं। एवं गिही नानुकरेति भिक्खनो, मुनिनोकिवित्तस्य वनम्हि क्षापतोयति।। सुत्त निपात–15, मुनि–सुत्त भिक्षु धर्मरत्न सारनाथ.वाराणसी–1961
4. K.D.P. Wichrem Single- The Buddhist view of life Article Buddhism contribution to the world culture and civilization- The Mahabodhi society of India- New Delhi.
5. भागचन्द्र जैन–बौद्ध संस्कृति का इतिहास, आलोक प्रकाशन, नामपुर, 1972, पृ0–21।
6. उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ– 1963।
7. दीघ निकाय–सिगालोवाद सुत्त–31, पृ0–271–276।

8. अंगुत्तर निकाय– भाग–2, 248, कलकत्ता– ई0सं0–1957, भाग–4, 364 दीघ निकाय भाग–3–152, नालन्दा प्रकाशन–1958।
9. अंगुत्तर निकाय–भाग–5, 137।
10. अंगुत्तर निकाय–भाग–3, 252–253, दीघ निकाय–भाग–3, 235–236।
11. अंगुत्तर निकाय–भाग–3, 211–213, राहुल सांकृत्यायन वाराणसी 1964, संयुक्त निकाय–भाग–4, 271–73।
12. मज्झिम निकाय–भाग–1, भिक्षु जगदीश कश्यप–नालन्दा प्रकाशन 1954, पृ0– 360–367।
13. अंगुत्तर निकाय– भाग–3, 37–38, भाग–256।
14. डा0 बी0आर0 अम्बेडकर– भगवान बुद्ध और उनका धर्म, शांति रक्षित ग्रंथालय केन्द्रिय उच्च शिक्षा संस्थान सारनाथ वाराणसी–1938, पृ0–356–60।

****